स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
द्वितीय सेमेस्टर

दिनांक -16-7-2024

चौपाई

गुर पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥

व्याख्या:- विद्यार्थियो इन पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास अपने गुरू महाराज नरहरिदास के चरणों की ही वन्दना करते हैं, वे बताते है कि गुरू तो महान है ही उनके चरण रज का भी महात्म्य बताते है, वे कहते कि उनके चरण रज का प्रभाव सुंदर नयनाभिराम अंजन के समान है और बताते हैं उनका चरणरज सम्पूर्ण दृष्टि दोष को मिटाने वाला है, दूर करने वाला है। वे गुरु चरणों का आभार व्यक्त करते हुए कहते हैं उन चरणों का ही प्रभाव है मुझे राम के चरित्र का वर्णन करने की सद्बुद्धि और सद्ज्ञान हुआ जो चरित्र सांसारिक दोषों को हरने वाला है।

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम [illegible]॥

विद्यार्थियो इन पंक्तियों गोस्वामी जी इस धरा धाम के देवता स्वरूप जो ब्राह्मण हैं उनके चरणों की भी मैं वन्दना करता हूँ। वे कहते हैं कि इस धरा पर प्रथम पूज्य हैं वे ब्राह्मण जो सांसारिक जनों की मोह जनित शंशय को हरने वाले हैं, दूर करने

है। वे संत समाज की भी आराधना करते हैं क्योंकि वे समस्त गुणों की खान हैं। वे उन्हें प्रेम सहित सुंदर वाणी से प्रणाम करते हैं।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

व्याख्या: इन पंक्तियों में गोस्वामी संतों के चरित्र और जीवन के बारे में जो कपास के समान होता है, वे कपास से संत चरित्र की तुलना इसलिए करते दोनों एक समान होते हैं। कपास किसी भी स्थिति में सुस्वादु नहीं होता है, नीरस होता है वैसे ही संत जन भी विषयासक्ति से दूर होते हैं, सांसारिक माया मोह से मुक्त होते हैं परंतु संत का हृदय अज्ञान और पाप रूपी अंधकार से रहित होता है इसीलिए विशद और व्यापक है वैसे कपास का तंतु और धागा गुण पूर्ण है। इसी प्रकार संत का सद्गुणों का भंडार होता है। जिस प्रकार कपास चुनने का कष्ट सहकर रजाई में भरने योग्य होता है, सूत बनके

कपड़ा बनता है और शरीर के गोपनीय अंगों
पर पर्दा प्रदान करता है उसी तरह संत स्वयं दुःख
सहकर दूसरे के दुखों समस्याओं को दूर
करते हैं। यह कारण वंदनीय है, आदरणीय है

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

यहाँ तुलसीदास पुनः संत समाज की विशेषताओं की
चर्चा करते हुए कहते हैं वे हमेशा समाज के लिए
आनंदमय और कल्याणमय होते हैं। वे चलते फिरते
तीरथराज प्रयाग के सदृश्य होते हैं जहाँ रामभ
रूपी गंगा की पवित्र धारा और ब्रह्मज्ञान और उस
प्रचार की सरस्वती सरस्वती भी प्रवाहित होती
रहती हैं। उन संतों के अंदर ही कलिकाल के दोषों के
हरनेवाली सूर्यतनया यमुना भी प्रवाहित होती
रहती हैं। इसी त्रिवेणी के किनारे विष्णु और शिव
की कथाएँ तथा राम और कृष्ण की लीलाओं

की त्रिवेणी रूप में आनन्द और कल्याण

कर रही है।

बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

विद्यार्थियों यहाँ भी संत समाज की ही महिमा की जाती है। यहाँ तुलसीदास कहते हैं कि संत समाज जो प्रयाग रूप है वह धर्म और ईश्वर में अटल विश्वास रखते हैं वह अक्षयवट के समान है और उनके शुभ कर्म ही तीर्थराज का समाज है। वह संत रूपी प्रयागराज सब देशों में सब समय सभी को सहज में ही प्राप्त हो सकता है और आदर पूर्वक सेवन करके अपने क्लेशों और कष्टों को नष्ट कर रहता है। संत समाज रूपी तीर्थराज प्रयाग अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल ही फल देने वाला है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में दर्शित होता रहता है।

दोहा

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥२

यहाँ तुलसीदास कहते हैं कि इस संत समाज रूपी तीर्थ- का प्रभाव जो मनुष्य प्रसन्न मन से सुनते और समझते वह फिर वे अत्यंत प्रेमपूर्वक

गोता लगाते हैं वे शरीर रहते चारों फल
अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

और स्वामीजी कहते हैं तीर्थराज प्रयाग और संत समाज के का प्रभाव तत्काल ही देखने को मिलता है जहाँ स्नान करने या वहाँ साधु संगति का फल ऐसा होता है कि कौआ के समान कर्कश ध्वनि वाला कोयल की तरह मीठी ध्वनि करने लगता है, बगुला की तरह कुरूप व्यक्ति भी मोर की तरह सुंदर, आकर्षक बन जाता है। यह बात बिल्कुल सत्य किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि संतों की महिमा किसी से छिपी हुई नहीं है।

वाल्मीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥

जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥

वाल्मीकि मुनि, देवर्षि नारद और महर्षि अगस्त्य जी ने अपने-अपने मुखों से अपना जीवन वृतांत कहा है, बताया इस संसार में जितने भी जीव जन्तु हैं चाहे वे थलचर हों नभचर हों या जलचर हो सभी पर प्रभाव पड़ता है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाउ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

यहाँ गोस्वामी जी बताते हैं सत्संग के बिना विवेक नहीं होता है और गुरु के बिना तथा श्री रामकृपा के बिना यह संभव नहीं है। इतना कहना उचित है कि सतसंगति ही आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग के पश्चात जो सिद्धि प्राप्त होती है, जो फल प्राप्त होता है वही परम सत्य है बाकी तो सब साधन मात्र है अर्थात फूल है, फल तो नहीं है। इसके संगत सूत्र और साधन फूल में रूपक अलंकार है।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥

विद्यार्थियों इन पंक्तियों में गोस्वामी जी यह बताते हुए राह दिखाते हैं कि दुष्ट-से-दुष्ट व्यक्ति भी साधुओं की सत्संगति पाते हैं वे अपनी गलत राह त्यागकर सुधर जाते हैं। उदाहरण के लिए यह बताते हैं पारस पत्थर यह भेद नहीं करता कि कौन सा लोहा बधिक के घर गर्दन काटने बना है या कौन मंदिर में बजने वाला घण्टा हो सकता, सबको खरा सोना बना देता है। वे आगे कहते हैं कि संयोगवश अगर संत पुरुष कुसंगति में पड़ जाता है तो वह भी

12 TUESDAY AUGUST

7

वह अपना प्रभाव उसी तरह कायम रखता है जिस
साँप का संसर्ग पाकर भी मणि अपना गुण नहीं
त्यागता है, उसी तरह विज्ञ, प्रभावकारी सत्संग
बना रहता है।

निधि हरिहर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनिगुन जैसे।

यहाँ संतों की महिमा की पराकाष्ठा पर गोस्वामी जी
देते हैं- वे कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव, तथा कवि
पण्डितों की वाणी क्या कह सकती है, वे संकोच से भ
जाते हैं, कुछ ही शब्दों में क्या कह सकते हैं, कवि अ
असमता के बारे में बताते हैं कि जिस प्रकार साग
बेचने वाला व्यापारी मणियों के गुण के समूह
का बखान नहीं कर सकते हैं।

= दोहा =

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ॥3(a)

कवि आंतरिक मन से संतों को प्रणाम करता और
कहता है जिनके चित्त में समता की भावना होती है,
उनका न कोई मित्र होता और न ही कोई शत्रु

2014

3

एक उदाहरण देकर बताते हैं कि फूल तोड़ने वाले हाथ के साथ दूसरा हाथ भी सुगंधित हो जाता है जो फूल को संभालने में मदद करता है।

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु ॥3(क)॥

तुलसीदास जी इस दोहे में कहते हैं जैसी समझ में यह आता है कि संत सरल हृदय होते हैं और जगत के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। यही सब समझकर कवि भी बालक के समान विनय करते हैं कि कृपा कर मुझमें श्रीराम के चरणों में प्रेम पैदा करें।

कुमार रजनीकान्त रंजन
12/8/2020